वैदिक संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण

वैदिक संस्कृति में पर्यावरण की पवित्रता का सम्बन्ध धर्माचरण से होने के कारण, वह अधर्म के विनाश की कामना करता है। प्राणी मात्र में सद्भावना हो, ऐसा प्रयत्न करता हुआ, विश्व के विनाश की नहीं, कल्याण की कामना करता है। ऐसे सभी दुष्कर्मों से दूर रहने का प्रयत्न करता है, जो जड़ और चेतन सबके विनाश के कारण हो सकते हैं। हमारी परम्पराएं एवं नियम इसके प्रमाण हैं।

वैदिक काल से आज तक भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों का यदि अवलोकन करें, तो उसकी अहिंसावादी विशिष्ट विशेषता सदैव दृष्टिगोचर होती है। वैदिक काल के ग्रंथों में 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' अर्थात् किसी भी जीव को मत मारो, यह आदेश था। अहिंसा से ही हम संस्कृतियों में परस्पर समन्वय करने में सफल हो सके हैं। सहिष्णुता एवं उदारता से ही हम अपने शाश्वत मूल्यों को बनाये रखने में सफल हो सकते हैं। दूसरों का अनिष्ट सोचना ही हिंसा नहीं, बल्कि दूसरों के विचारों को ठुकरा देना, दूसरों के सम्मान को ठेस पहुंचाना भी हिंसा की श्रेणी में आता है। यही कारण है कि इस मूलभूत आधार को अपनाकर, हम अमृत बरसाने में विश्वास करते हैं, जबकि यूरोप और अन्य देश विष उगल रहे हैं। अतः हम सहिष्णुता, उदारता और अहिंसा आदि सिद्धान्तों को अपनाकर अनेकता में एकता को समेटे हुए हैं और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संस्कृति में संतुलन बनाये हुए हैं। परन्तु आज हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सम्पूर्ण समाज को हानि पहुंचाने में कोई हिचकिचाहट नहीं करते और अपने आर्थिक लाभ को प्राप्त करने के लिए प्रकृति का अत्यधिक दोहन करने में किसी भी प्रकार संकोच नहीं करते हैं। यही हमारे पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है। हम प्रारम्भ से ही प्रकृति–पूजक रहे हैं, जिसमें अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, उषा, वृक्ष आदि विशिष्ट रहे हैं।

वैदिक आर्यों ने सदैव प्रकृति की पूजा की है। द्रविड़ों ने भी प्राकृतिक उपादानों को सदैव आदर की दृष्टि से देखा। वे पत्र, पुष्प, फल, चन्दन को पवित्र मानते हैं। द्राविड़ों की मान्यता है कि हवन से प्रदूषण समाप्त होता है तथा पुष्प, चन्दन की सुगंध से वातावरण सुरभित होता है। आर्यों ने भी हवन, यज्ञ आदि की महत्ता को स्वीकारा है। भारतीय शास्त्रों में, विशेषतः उपनिषदों में, पृथ्वी को परमात्मा का शरीर, स्वर्ग को मस्तिष्क सूर्य और चन्द्रमा को आँखें तथा आकाश को मन माना है। उपनिषदों के अनुसार यदि पृथ्वी परमात्मा का शरीर है तो पेड़–पौधों को काटना एवं जलस्रोतों को प्रदूषित करना, परमात्मा को आघात पहुंचाना है। इसी प्रकार आकाश में विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान करने का मतलब परमात्मा के मन को मलिन करना है। आर्यों की मान्यता रही है कि वृक्ष और जलस्रोत सदैव पूजनीय है। वे तुलसी, वट वृक्ष, पीपल बेल, वृक्षों को पवित्र मानते थे। परन्तु आज आर्यों की संतान कहलाने वाले हम इन पेड़–पौधों को बेरहमी से काट रहे हें। नदियों को कल–कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों से प्रदूषित कर रहे हैं। मृतकों की अस्थियाँ व लाशें बहा रहे हैं जिससे पवित्र नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है। वृक्षों को काट कर हिमालय को बाँझ बनाया जा रहा है। वनों को काटा जा रहा है तथा कल–कारखानों के धुएं से वायुमण्डल को प्रदूषित किया जा रहा है। ऐसा हम अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कर रहे हैं, परन्तु ऐसा करने के फलस्वरूप प्रदूषित पर्यावरण के कारण मानवता के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न किया जा रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व की प्राचीन आर्य सभ्यता ने भी प्रकृति को पूजनीय माना तथा भारतीय प्राचीन शास्त्रों ने भी आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल को जीवन के अस्तित्व का प्रमुख स्रोत माना है। इनको नष्ट करने व अत्यधिक शोषित करने से केवल पर्यावरण ही दूषित नहीं होगा, वरन् मानव समाज का जीवित रहना भी कष्टप्रद हो जायेगा।

वैदिक काल में चित्रों का चलन था। उस समय इन्द्र की मूर्तियाँ विक्रय हेतु उपलब्ध थीं। कृषि व्यवसाय एवं पशुपालन के कारण लोग गाँवों व छोटी ढाणियों में रहते थे। गाँवों में लकड़ी की बनी झोंपड़ियाँ हुआ करती थी। दीवारों पर गोबर से बने गारे का उपयोग प्रचुर मात्रा में होता था। मुख्य द्वार पर तोरण बनाने की परम्पराएँ रही हैं। आज भी आदिवासियों व राजस्थान के रेगिस्तान की दूरस्थ ढाणियों में ऐसी व्यवस्था उपलब्ध है, परन्तु सामान्यतः तोरण व झोपडियाँ लगभग समाप्त–सी हो गई है, लेकिन इस भारतीय स्थापत्य कला के अवशेष आज भी जापान, चीन व रुस के ग्रामीण इलाकों में दृष्टिगत होते हैं।

हमारी वैदिक प्रार्थना, शान्ति पाठ एवं स्वस्ति वाचन में औषधि, वनस्पति, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश सभी की शान्ति हेतु विनती की जाती है। यह सब

पर्यावरण शुद्धि से ही संभव है। इसी शुद्धि हेतु हमारे पूर्वजों ने दैनिक यज्ञों की परम्परा डाली। विशिष्ट अवसरों पर इन यज्ञों के विशाल स्वरूप का संयोजन हमारी संस्कृति की पर्यावरण संरक्षण की वह दीर्घकालीन परम्परा है, जिसका प्रभाव आज भी जन–जीवन पर है। परन्तु ऐसा जीवन आज के इस वैज्ञानिक एवं आधुनिक समाज में रुढ़िवादी एवं पिछड़ा हुआ ही माना जाता है।

आज पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें अपने अतीत की ओर दृष्टि डालनी होगी। अपने पूर्वजों के समान अग्निहोत्र, आहार–विहार, रहन–सहन और जीवन पद्धति को अपनाना होगा, अन्यथा यह असुरक्षित एवं प्रदूषित पर्यावरण हमें निरन्तर विनाश के गर्त में ढकेलता ही रहेगा।

वेद एवं पर्यावरण-संरक्षण

पुरातत्त्व की दृष्टि से भारतीय धर्म और संस्कृति का विकसित रूप सर्वप्रथम सैन्धव सभ्यता में दिखाई देता है और साहित्य की दृष्टि से इसका परिपक्व रूप सर्वप्रथम वेदों में मिलता है। वेद सत्य हैं, सत्य काल से परे हैं, अतः वेद शाश्वत हैं। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ ज्ञान हुआ। चिन्तन, दर्शन और साक्षात्कार के क्षणों में जो ज्ञान रश्मियाँ, ऋषियों के मन पटल पर अवतीर्ण हुई, वे शब्दों और प्रतीकों के माध्यम से वेद के मंत्रों और सूक्तों के रूप में प्रकट हुईं। यह दिव्य ज्ञान कई परिभाषाओं और परिकल्पनाओं से युक्त होकर एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पल्लवित हुआ और उसके अनुरुप एक विशेष धार्मिक दर्शन, आचार–संहिता और जीवनशैली का निर्माण हुआ। इस प्रकार वेद हमारी भारतीय संस्कृति के विकास की गतिशीलता के सूचक हैं।

विश्व की प्राचीनतम मानव सभ्यता के युग से आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं वैज्ञानिक आविष्कारों का मुख्यतः आधार भूमण्डल में स्थित प्रमुख चार अवयव–जल, अग्नि, वायु और मृदा हैं। इन चारों वस्तुओं के विषद् ज्ञान को वेद कहते हैं।

वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद और इनकी चार अलग–अलग संहिताएं हैं। विभिन्न प्रकार के बिखरे हुए वेद मंत्रों का संकलन करने का कार्य, ऋषियों ने सम्पन्न कर, उन्हें संहिताओं में विभाजित किया। भू–मण्डल में स्थित चार वस्तुओं में से जल के सम्बन्ध में सामवेद में वर्णन किया गया है। सामवेद में जल के रूपान्तरण, कार्य तथा गुणों का ज्ञान तथ ऋग्वेद में अग्नि के बारे में ज्ञान उपलब्ध है।

यजुर्वेद में वायु के विभिन्न प्रकार एवं उनके कार्यों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में मृदा के विभिन्न गुणों से अवगत हो सकते हैं, इसी कारण जल, अग्नि, वायु और मृदा को क्रमशः सामवेद,

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद कहा जाता है। अग्नि, जल, वायु और मृदा के क्रमशः 21,1,000,101 एवं 09 मुख्य विभाग होते हैं। अतः इन सब का योग 1, 131 के बराबर है। वेदों की 1, 131 शाखाएं हैं जो सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में क्रमशः 1,000,21,101,09 हैं। यजु का अर्थ वायु है और अथर्व का अर्थ मिट्टी है।

प्रत्येक वेद में जल, अग्नि, वायु और मिट्टी पारिभाषिक शब्द हैं और उनसे केवल हमारे इस जल, अग्नि वायु और मिट्टी का ही तात्पर्य नहीं है। वरन् इन चारों पदार्थों के आदि स्वरूप की अवयव अवस्था से लेकर स्थूलतम अवस्था तक जितने रूप, विभाग इत्यादि बनते हैं, वे सब वेद में निहित हैं। उदाहरणस्वरूप जल से वेद में घृत, मधु, सुरा, जल इत्यादि समस्त जलीय पदार्थों से अभिप्राय है और जल के सूक्ष्म कण जो वाष्प रूप में आकाश में स्थित हैं उनको भी वेद जल ही कह कर पुकारता है।

प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति की आदि अवस्था से अन्त्य अवस्था तक पूर्णावलोकन कर, प्रत्येक देश में उन देशों की प्राकृतिक रचना को देखकर, इन शाखाओं का विस्तृत तथा क्रमवार प्रचार किया। उदाहरणस्वरूप उत्तरप्रदेश जल और वायु प्रधान होने से विन्ध्य पर्वत के ऊपर साम और यजुर्वेद का प्रचार हुआ और विन्ध्य से नीचे दक्षिण देश अग्नि और भूमि प्रधानहोने से ऋग्वदे तथा अथर्ववेद का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इससे स्पष्ट है कि हमारे ऋषि–मुनियों को संसार का बहुत सूक्ष्म एवं विस्तृत ज्ञान था, तभी तो वे परिस्थिति–अनुकूल वेदों का प्रचार करने में सफल हो सके।

वेदों का अध्ययन प्राचीन काल में वेद की आज्ञानुसार (यजुर्वेद अ 26/15) ही पर्वतों के शिखर पर अथवा नदियों के संगम पर किया जाता था। ऋक् और अथर्व का अध्ययन पर्वतों पर होता था, कारण कि पत्थर की उत्पत्ति अग्नि से है और पर्वतों पर सूर्य की रश्मि द्वारा पत्थर पर जो प्रभाव पड़ता है वह भी जाना जा सकता है। इसे अग्नि तथा मिट्टी का ज्ञान विशेष रूप से वहां भी जाना जा सकता है। साम और यजु का अध्ययन नदियों के संगम पर हुआ करता था। इसका कारण भी स्पष्ट है कि दो नदियों के जल–संगम से विभिन्न गुणों एवं शक्तियों की संभावनाओं का भी अवलोकन हो जाता है। वायु और जल के संघर्ष से नवीन शक्ति के प्रकट होने की सम्भावनाएं होती थी, उसका भी प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन सरलता एवं सुगमता से किया जा सकता है।

यजुर्वेद के वर्णनानुसार एक ही विद्युत के दीप से उत्तरी ध्रुव के नीचे बिन्दु सरोवर के ऊपर रखा जाता था जो सम्पूर्ण एशिया को प्रकाश देता था। ऋग्वेद 4 अ 4 के अनुसार उनका सामाजिक जीवन भी इतना पवित्र तथा उच्च था कि सदैव उनका उद्देश्य यही रहता था कि सभी देशों में शान्ति स्थापित रहे।

यजुर्वेद आख्यान 17/20 में लिखा है कि वैदिक मंत्रों के आधार पर मन द्वारा ही सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस आधुनिक काल में वैज्ञानिक सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में तथ्यात्मक तर्क देने में असफल हैं, कि ईश्वर ने इतने बड़े संसार की रचना कैसे की जब सृष्टि के आदि में कुछ भी नहीं था तो भला उसका वर्णन कौन कर सकता है ? उस काल में न देवता थे और न ही मनुष्य फिर मन और प्राण ही सूक्ष्म अवस्था में उस काल में वहां उपस्थित थे। अतः वेद ने उसी मन की ओर संकेत कर हमें सृष्टि विज्ञान को सही ढंग से जानने का एक मात्र यंत्र दिया है तो वह मन ही है। (ऋग्वेद अ 20 सू 164 स 4 के अनुसार)।

ऋग्वेद अ 2 अ 20 म 13 के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पांच चक्रों स्वयंभू, परमेष्ठि, सूर्य, पृथ्वी और चन्द्र पर आधारित है। प्रत्येक चक्र सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक कभी नहीं टूटता। इन्हीं परमेष्ठि सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्र के स्वयंभू मण्डल में विलीन हो जाने से प्रलय होती है। जिन शक्तियों और नियमों के आधार पर पांचों चक्र अपने–अपने भार को धारण करते हैं उन्हें सनातन धर्म कहते हैं, क्योंकि ये आदि से अन्त तक धारण किया रहता है। धर्म वही है, जो प्रकृति के अनुकूल हो और पाप वही है, जो प्रकृति के विरूद्ध हो।

आज विश्व के बुद्धिजीवी, विद्वान, विचारक एवं दार्शनिक इस तथ्य से सहमत हैं कि वेद ज्ञान का प्रकाश पुञ्ज है, जिनसे ऐसे अखण्ड, अनन्त, अपरिमित ज्ञान का बोध होता है, जिसको सृष्टि के ऋषियों–मुनियों ने अपनाया था। वेद–शास्त्र के विद्वान, वेद को, सृष्टि विज्ञान का सम्पूर्ण एवं परिपूर्ण ग्रन्थ मानते हैं। मनुष्य की उन्नति, प्रगति, सभ्यता एवं संस्कृति तथा पर्यावरण संरक्षण का जो विकास हुआ है या भविष्य में होगा वह वेदों के अध्ययन एवं अनुसंधान से ही सम्भव है।

❑❑